भारत में संकट के बाद समष्टि आर्थिक चुनौतियां *

दीपक मोहंती

मैं प्रोफेसर अदिति अभ्यंकर को धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने मुझे इस विशिष्ट पैनल का हिस्सा बनने और इन युवा श्रोताओं को संबोधित करने का अवसर दिया। देश के भविष्य के रूप में इस वैश्वीकृत संसार में हमारी अर्थव्यवस्था के कार्य-निष्पादन में आपका बहुत अधिक योगदान है अर्थात, इससे जो अवसर मिल रहे हैं इससे जो आशा बनी है और जिन चुनौतियों का हम सामना कर रहे हैं। इसीलिए, आज के लिए हमारा विषय है - भारतीय अर्थव्यवस्था का हाल में किया गया समष्टिआर्थिक कार्यनिष्पादन।

जैसा कि आप जानते हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था में 2000 के दशक के शुरुआती दिनों में वृद्धि देखी गई, जिस पर वैश्विक वित्तीय संकट, विशेष रूप से सितंबर 2008 में लीमन ब्रदर्स के पतन के बाद, का प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। यद्यपि 2009 में वैश्विक अर्थव्यवस्था मंदी से बहाल हुई, किन्तु अभी भी यह अनेक समस्याओं से जूझ रही है। वैश्विक अर्थव्यवस्था में अनिश्चितताओं के अतिरिक्त, भारतीय अर्थव्यवस्था कई अन्य देशी कारकों के चलते चुनौतियों का सामना कर रही है।

इस पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर, मैं अपनी प्रस्तुति आपके समक्ष निम्नलिखित क्रम से प्रस्तुत करूंगा। पहला, मैं उभरती और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के अंतर्गत वैश्विक अर्थव्यवस्था में भारत की स्थिति प्रस्तुत करूंगा। दूसरा, मैं संकट के बाद 2008-12 के 4 वर्ष के समष्टि आर्थिक निष्पादन की तुलना 2003-08 तक के 5 वर्ष की अधिक वृद्धि वाली अवधि से करूंगा और इसी अवधि के दौरान क्या असमानताएं रहीं इस पर भी चर्चा करूंगा। तीसरा, मैं उन चुनौतियों का उल्लेख करूंगा जिन पर भारतीय अर्थव्यवस्था को अपनी संवृद्धि को पुनः प्राप्त करने के लिए विजय पाना जरूरी है। अंत में, मैं इस विचार के साथ अपना अनुमान प्रस्तुत करूंगा कि आप स्वयं सोचें कि भारत उच्च मध्य-आय वाला देश कब बन सकता है?

संसार में भारत की स्थिति

बाजार विनिमय दर पर अमरीकी डॉलर में, वैश्विक जीडीपी में उभरती और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं की भागीदारी 2000 के 20 प्रतिशत से बढ़कर 2011 में 36 प्रतिशत हो जाने के कारण वैश्विक जीडीपी में पिछले दशक के दौरान काफी बदलाव हुआ। क्रय शक्ति समता (पीपीपी) के संदर्भ में, भागीदारी 37 प्रतिशत से बढ़कर लगभग 49 प्रतिशत हो गई। इस प्रकार, वर्तमान में, वैश्विक आर्थिक भार उभरती और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं तथा उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में समान रूप से विभाजित हो गया है। किन्तु, इसमें रुचिपूर्ण बात यह है कि उभरती और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं ने प्रतिकूल आर्थिक परिस्थितियों में भी उन्नत अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में अधिक गति से वृद्धि करनी जारी रखी। इससे बड़े पैमाने पर उभरती और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के पक्ष में वैश्विक आर्थिक संतुलन का झुकाव होगा। इसलिए, वैश्विक वृद्धि कायम करने का फोकस उन्नत अर्थव्यवस्थाओं से उभरती और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं की तरफ आ गया है। साथ ही, प्रमुख उभरती और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं जैसे ब्राजील, रूस, भारत, चीन और दक्षिण अफ्रीका, जिन्हें ब्रिक्स के नाम से जाना जाता है, में वृद्धि का रुझान इस प्रकार के मूल्यांकन का केन्द्र रहा है।

2000-11 तक की अवधि के दौरान, संसार की जीडीपी में भारत का हिस्सा अमरीकी डालर के अनुसार 1.5 प्रतिशत से बढ़कर 2.4 प्रतिशत और पीपीपी के संदर्भ में 3.8 प्रतिशत से बढ़कर 5.7 प्रतिशत हो गया। किन्तु वैश्विक जनसंख्या में भारत के 17.4 प्रतिशत की भागीदारी होने के कारण यह बढ़ोतरी बहुत कम है।

वृद्धि की गति उस स्थिति में बिल्कुल अगल लगती है जब संकट के पहले 5 वर्षों और संकट के बाद के 4 वर्षों की तुलना की जाती है। इन दो अवधियों के बीच भारत की वास्तविक जीडीपी संवृद्धि में गिरावट वैश्विक जीडीपी की संवृद्धि की तुलना में कम है। इस प्रकार, संवृद्धि में गिरावट के बावजूद, संसार की संवृद्धि में भारत का योगदान समान अवधि के दौरान 10 प्रतिशत से बढ़कर लगभग 16 प्रतिशत हो गया (सारणी 1)।

उच्च संवृद्धि के प्रारंभिक चरण के चलते, भारत 2008 में पहली बार 1025 अमरीकी डालर की उच्चतम सीमा को पार करके अपनी प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय आय को बढ़ा सका और विश्व बैंक द्वारा इसे न्यूनतर-मध्यम आय वाले देश के रूप में वर्गीकृत किया

* 28 अगस्त 2012 को रुइया कालेज, मुंबई में भारतीय रिजर्व बैंक के कार्यपालक निदेशक श्री दीपक मोहंती द्वारा दिया गया भाषण। इस भाषण को तैयार करने में राजीव जैन और बिनोद बी. भोई के सहयोग के लिए आभार।

सारणी 1: विश्व की अर्थव्यवस्था में भारत की स्थिति

मद	2002	2003-07	2008-11	2011
	1	2	3	4
1. अमरीकी डॉलर के संदर्भ में जीडीपी (विश्व में प्रतिशत हिस्सा)	1.5	1.8	2.3	2.4
2. जीडीपी पीपीपी आधारित (विश्व में प्रतिशत हिस्सा)	3.8	4.3	5.3	5.7
3. विश्व संवृद्धि में योगदान (प्रतिशत)	8.7	9.9	15.7#	13.7
4. जीएनआई प्रति व्यक्ति (अमरीकी डॉलर)	470	728	1,213	1,410
5. जीडीपी प्रति व्यक्ति पीपीपी आधारित (अमरीकी डॉलर)	1,673	2,225	3,282	3,694
6. विश्व : जीडीपी संवृद्धि (प्रतिशत)	2.9	4.7	2.8	3.9
7. भारत : जीडीपी संवृद्धि (प्रतिशत)	4.6	8.6	7.7	7.1

2009 इसमें शामिल नहीं है क्योंकि विश्व जीडीपी संवृद्धि ऋणात्मक थी।
* आईएमएफ के अनुसार कैलेंडर वर्ष संवृद्धि।
स्रोत: वर्ल्ड इकनॉमिक आउटलुक (आईएमएफ और विश्व बैंक)।

सारणी 2: वास्तविक अर्थव्यवस्था

मद	2002-03	संकट-पूर्व	संकट के बाद	2011-12
		(2003-08)	(2008-12)	
	1	2	3	4
	(प्रतिशत बदलाव)			
1. समग्र वास्तविक जीडीपी	**4.0**	**8.7**	**7.5**	**6.5**
1.1 कृषि	-6.6	4.9	2.7	2.8
1.2 उद्योग	6.9	8.8	5.6	2.6
1.2.1 विनिर्माण	6.9	9.7	6.0	2.5
1.3 सेवाएं	7.1	9.8	9.3	8.5
2. व्यय के तरफ का जोड़				
2.1 निजी खपत	2.9	7.5	7.0	5.5
2.2 सरकारी खपत	-0.2	5.8	9.4	5.1
2.3 नियत पूंजी निर्माण	-0.4	16.2	5.8	5.5
	(प्रतिशत)			
3. जीडीपी में हिस्सा				
3.1 कृषि	20.1	18.4	14.8	14.0
3.2 उद्योग	20.6	20.3	19.9	19.2
3.3 सेवाएं	59.3	61.3	65.4	66.8

गया। इसके बाद, संकट के बाद की अवधि के दौरान प्रति व्यक्ति आय धीमी गति से बढ़कर 2011 में 1410 अमरीकी डालर हो गई। जबकि वर्तमान में, भारत की प्रति व्यक्ति आय ब्रिक्स राष्ट्रों में सबसे कम है। इस बात का उल्लेख करना जरूरी है कि भारत ने अपनी वास्तविक प्रति व्यक्ति आय को दोगुना करने में उत्तरोतर कम वर्ष अर्थात 1950-51 से 40 वर्ष, 1991-92 से 15 वर्ष लिए हैं और वर्तमान रुझान के अनुसार 2017-18[1] में भारत की वास्तविक प्रति व्यक्ति आय दोगुना हो सकती है।

अब मैं भारत की आर्थिक संवृद्धि के प्रमुख प्रेरक कारकों और 2007-08 के बाद संकट के बाद की अवधि के दौरान संवृद्धि में गिरावट लाने वाले कारकों के बारे में चर्चा करूंगा।

संकट के पूर्व संवृद्धि में तेजी

2003-08 तक के 5 वर्ष की अवधि के दौरान भारत ने 8.7 प्रतिशत वार्षिक वास्तविक जीडीपी वृद्धि दर्ज की जिसमें निम्नलिखित प्रमुख तीन क्षेत्रों का योगदान था : कृषि, उद्योग, सेवा क्षेत्र (सारणी2)। इनके चलते संवृद्धि पथ में काफी वृद्धि हुई। जहां पूर्व में किए गए सुधार और अनुकूल वैश्विक आर्थिक वातावरण के चलते उद्योग और सेवा क्षेत्रों में काफी वृद्धि हुई, वहीं कृषि संवृद्धि में आंशिक रूप से अनुकूल मौसम का भी सहयोग मिला। यद्यपि अर्थव्यवस्था में कृषि का हिस्सा लगातार कम होता जा रहा है, फिर भी यह उल्लेख करना जरूरी है कि कृषि संवृद्धि के उपर्युक्त-रुझान न केवल समग्र संवृद्धि की गति तेज करते हैं बल्कि खाद्य वस्तुओं की कीमतें कम रखकर देशी मूल्य स्थिरता को बनाए में सहयोग करते हैं।

जीडीपी संवृद्धि के स्रोतों को विश्लेषित करने की अन्य प्रणाली व्यय संबंधी दृष्टिकोण है। व्यय पक्ष में मुख्य रूप से निजी कार्पोरेट क्षेत्र की समग्र निवेश दर में बढ़ोतरी के कारण उच्चतर आर्थिक वृद्धि हुई। निवेश को वित्त अधिकांश रूप से उच्चतर देशी बचतों द्वारा दिया गया (सारणी 3)। निजी क्षेत्र के निवेश में बढ़ोतरी स्रोतों की उपलब्धता में बढ़ोतरी के कारण हुई जो नियम आधारित राजस्व समेकन के चलते निजी बचत पर सार्वजनिक क्षेत्र के ड्राफ्ट में कमी को दर्शाती है। उच्चतर संवृद्धि के आकर्षण ने विदेशी स्रोतों से ऋण लेना आसान कर दिया। कार्पोरेट क्षेत्र ने भी अपने प्रतिधारित अर्जन के जरिए उच्चतर आंतरिक स्रोत बनाए हैं। यह सब अधिक लाभप्रदता के चलते संभव हो पाया जो उत्पादकता में सुधार कर दरों को कम करने और सांकेतिक ब्याज दरों को कम करके ऋण भुगतान दरों में कमी को दर्शाता है[2]। परिणामस्वरूप, सांकेतिक ब्याज दरों में कमी को विवेकसम्मत

[1] देखें मोहंती, दीपक (2011), भारतीय अर्थव्यवस्था : प्रगति और संभावनाएं विषय पर 27 सितंबर को हारवर्ड बिजनेस स्कूल, बोस्टन में दिया गया भाषण।

[2] विस्तृत चर्चा के लिए देखें 4 फरवरी को इन्स्टीट्यूट ऑफ इकनॉमिक ग्रोथ द्वारा 'भारत में संवृद्धि और समष्टिआर्थिक मुद्दे और चुनौतियां' विषय पर आयोजित सम्मेलन में मोहन, राकेश (2008) के दि ग्रोथ रिकार्ड ऑफ इण्डियन इकॉनामी, 1950-2008: 'ए स्टोरी ऑफ सस्टेंड सेविंग्स एंड इन्वेस्टमेंट' भाषण से लिया गया अंश।

सारणी 3 : बचत और निवेश

मद	संकट-पूर्व (2003-08)	संकट के बाद (2008-11)
	1	2
(वर्तमान बाजार कीमतों पर जीडीपी के अनुपात के रूप में)		
1. सकल देशी बचत	**33.3**	**32.7**
1.1 पारिवारिक बचत	23.2	23.9
1.1.1 वित्तीय आस्तियां	11.2	11.0
1.1.2 भौतिक आस्तियां	12.0	12.9
1.2 निजी कार्पोरेट क्षेत्र	7.2	7.8
1.3 निजी क्षेत्र	2.9	1.0
2. सकल देशी पूंजी निर्माण (जीडीसीएफ)#	**33.6**	**35.3**
2.1 पारिवारिक	12.0	12.9
2.2 निजी कार्पोरेट क्षेत्र	12.5	12.0
2.3 निजी क्षेत्र	7.8	9.1
3. बचत-निवेश अंतराल	**-0.3**	**-2.6**
ज्ञापन मदें:		
4. आईसीओआर*	**3.9**	**4.8**

: जीडीसीएफ में बहुमुल्य वस्तुओं के साथ-साथ भूल-चूक भी शामिल है और इसलिए हो सकता है कि तीन क्षेत्रों के कुल जोड़ से मेल न खाए।

* : वास्तविक निवेश दर और वास्तविक जीडीपी संवृद्धि का अनुपात।

राजकोषीय और मौद्रिक नीति द्वारा मुद्रास्फीति में कमी करने से सहूलियत मिली।

समग्र ब्याज दर संरचना में कमी के चलते सरकार अपने ऋण-भुगतान भार, जिसने सार्वजनिक क्षेत्र की बचत को बढ़ाने में आंशिक रूप से योगदान किया, में कमी कर सकी। इससे भी ज्यादा महत्वूपर्ण बात यह है कि राजकोषीय उत्तरदायित्व और बजट प्रबंध अधिनियम 2003 के तहत नियम-आधारित राजकोषीय नीति के अनुपालन के कारण सभी घाटे के संकेतकों में काफी कमी आई। केन्द्र का राजकोषीय घाटा 1990 के दशक के दौरान 5.9 प्रतिशत से उच्च संवृद्धि चरण के काल में कम होकर जीडीपी का 3.6 प्रतिशत रह गया। प्राथमिक घाटा मामूली-सा अधिशेष हो गया। परिणामस्वरूप, सार्वजनिक क्षेत्र की बचत पिछले पांच वर्षों में 0.8 प्रतिशत की निर्बचत से 2003-08 के दौरान बढ़कर जीडीपी का 2.9 प्रतिशत हो गई।

अन्य विशेषता पारिवारिक वित्तीय बचत में लगातार वृद्धि का होना है। यह मुख्यतः कार्पोरेट और सार्वजनिक क्षेत्र के बचत-निवेश अंतराल को वित्त पोषित करती है। वित्तीय क्षेत्र के बढ़ने से परिवारों द्वारा बैंक ऋण विशेष रूप से आवास ऋण, जो पारिवारिक निवेश दर में संवृद्धि को दर्शाते हैं, अधिक लिए गए।

उच्च संवृद्धि चरण के दौरान जीडीपी के 33.3 प्रतिशत की समग्र सकल देशी बचत दर के कारण बाह्य ऋण की अधिक मदद लिए बिना समग्र निवेश दर बढ़कर 33.6 प्रतिशत हो गई। साथ ही, पूंजी उत्पादकता भी उच्च बनी रही जैसा कि वृद्धिशील पूंजी-उत्पादन अनुपात 4 से थोडा कम दर्शाया गया है। भारत की उत्पादकता रिपोर्ट 2012 के अनंतिम अनुमानों में उल्लेख किया गया है कि किफायती स्तर पर कुल कारक उत्पादकता में काफी वृद्धि अर्थात 1980-1999 के दौरान वार्षिक रूप से लगभग 0.7 प्रतिशत से बढ़कर 2000-2008 के दौरान वार्षिक रूप से 1.9 प्रतिशत होने की संभावना है। इस प्रकार, संवृद्धि को बढ़ाने में उत्पादकता में सुधार के साथ-साथ उच्च देशी बचत ने सहयोग किया है।

संकट के बाद संवृद्धि में कमी आई

2008 में वैश्विक वित्तीय संकट ने भारत के संवृद्धि पथ में व्यवधान डाला। संकट के मुख्य केन्द्र से दूर होने के बावजूद भारत संकट के प्रतिकूल प्रभाव से बच नहीं पाया। वैश्विक वित्तीय संकट के शुरुआती प्रभाव सभी माध्यमों यथा वित्त, स्थावर और विशेष रूप से विश्वास माध्यमों में देखे गए[3]। शुरुआती दौर में इसका प्रभाव भारत के वित्तीय बाजार में देखा गया - ईक्विटी की कीमतों में गिरावट आई जो वैश्विक निवेश की निकासी को दर्शाती है, मुद्रा के मूल्य में कमी आई जो वैश्विक जोखिम विमुखता को दर्शाती है और वित्तीयन के बाह्य स्रोतों के देशी स्रोतों में प्रतिस्थापन के चलते मुद्रा व ऋण बाजार दवाब में आ गए। अधिक वैश्विक समेकन को दर्शाते हुए, भारतीय व्यापार और व्यवसाय चक्र भी वैश्विक चक्र के साथ अधिक समकालिक हो गया[4]। परिणामस्वरूप, बाह्य मांग आघातों के प्रतिकूल प्रभाव के चलते भारतीय आर्थिक संवृद्धि 2007-08 के 9.3 प्रतिशत से कम होकर 2008-09 में 6.7 प्रतिशत रह गई। विस्तारकारी मौद्रिक और राजकोषीय नीति रेसपांस के फलस्वरूप 2009-10 और 2010-11 के दौरान तेजी से सुधार हुआ किन्तु 2011-12 में पुनः यह गिरकर 6.5 प्रतिशत हो गई। जीडीपी संवृद्धि 2012-13 में भी 6.5 प्रतिशत रहने की संभावना है।

भारतीय संवृद्धि की कहानी के प्रबल देशी स्वरूप के बावजूद, संवृद्धि में अस्थिरता ने संवृद्धि की संभाव्य दर और संभाव्यता के

[3] 18 फरवरी को टोकियो में इंस्टीट्यूट फॉर इंटरनेशनल मोनेटरी एफेयर्स द्वारा आयोजित 'वैश्विक आर्थिक संकट और चुनौतीपूर्ण संसार में एशियाई अर्थव्यवस्था के लिए चुनौतियाँ' विषय पर आयोजित परिसंवाद में डी सुब्बाराव (2009) के द्वारा 'भारत पर वैश्विक वित्तीय संकट का प्रभाव : संपार्श्विक क्षति और प्रतिक्रिया', पर दिए गए भाषण का अंश।

[4] मोहंती, दीपक (2009), 'भारत में वैश्विक वित्तीय संकट और मौद्रिक नीति प्रतिक्रिया', भा.रि.बैं. बुलेटिन, दिसंबर।

आसपास संवृद्धि को स्थिर रखने के लिए समष्टिआर्थिक नीतियों की भूमिका को चर्चा का विषय बना दिया है। संवृद्धि की क्षेत्रगत संघटना के विश्लेषण से पता चलता है कि 2008-12 के दौरान संवृद्धि में कमी मुख्यतः विनिर्माण और कृषि के कारण हुई। व्यय पक्ष में संवृद्धि निजी और सरकारी खपत व्यय दोनों के द्वारा हुई क्योंकि निवेश संवृद्धि में कमी आई। उत्पादकता संवृद्धि धीमी पड़ गई है जैसा कि संकट के पहले की अवधि के दौरान 3.9 से 4.8 आईसीओआर होने की संवृद्धि में दर्शाया गया है। सार्वजनिक क्षेत्र की बचत में काफी कमी के चलते देशी बचत में कमी आई क्योंकि सरकारी राजस्व घाटा बढ़ गया था। इससे भी ज्यादा चिंता का विषय वित्तीय आस्तियों में परिवारिक बचत में तीव्र गिरावट का होना है।

2011-12 के लिए कुल बचत अनुमान उपलब्ध नहीं हैं, किन्तु प्रारंभिक अनुमान के अनुसार परिवारिक वित्तीय बचत उच्च संवृद्धि चरण के, 11.6 प्रतिशत के औसत की तुलना में, 2010-11 में पहले से ही कम रहने वाले 9.3 प्रतिशत से 2011-12 में तेजी से गिर कर जीडीपी का 7.8 प्रतिशत रह गई है। मुद्रास्फीतिकारक वातावरण में, परिवारों ने अपनी बचत निकाल करके खपत के अपने वास्तविक मूल्य को बचाने का प्रयास किया है। इसके अतिरिक्त, सोने के लिए परिवारों की बढ़ती पसन्द ने भी वित्तीय बचत को कम किया है।

बचत-निवेश का अंतराल बढ़ गया है जिसे विदेशी बचत की सहायता से पूरा किया गया। यह उच्च संवृद्धि चरण के दौरान 0.3 प्रतिशत से बढ़कर 2008-12 के दौरान जीडीपी के 3.0 प्रतिशत चालू खाते के घाटे के रूप में परिलक्षित हुआ। वास्तव में, चालू खाते का घाटा उच्च अर्थात 2011-12 में जीडीपी का 4.2 प्रतिशत रहा।

सोने और कच्चे तेल के आयात में तीव्र वृद्धि ने मुख्यतः चालू खाते का घाटा बढ़ाने में योगदान दिया, कच्चे तेल के आयात में वैश्विक कीमतों में आंशिक वृद्धि और अपूर्ण देशी कीमतों के प्रभाव के अंतरण के रूप में परिलक्षित हुआ। जितना अधिक सोने की मांग को आयात के जरिए पूरा किया जाएगा, उतना ही अधिक इससे न सिर्फ बैंकिंग प्रणाली से रिसाव पैदा होगा, बल्कि जीडीपी के लगभग 2.5 प्रतिशत के वहनीय स्तर से अधिक चालू खाते का घाटा बढ़ेगा[5]। 2008-09 और 2011-12 के संकट के दौरान चालू खाते के घाटे को वित्त देने के लिए निवल पूंजी प्रवाह अपर्याप्त होने के कारण आरक्षित निधियों से आहरण करना पड़ा। इन गतिविधियों

[5] 2011-12 की पहली तिमाही की समीक्षा के लिए भारतीय रिज़र्व की समष्टिआर्थिक गतिविधियों में अनुमान लगाया गया कि 7 प्रतिशत की जीडीपी के होने से सीएडी-जीडीपी का अनुपात का लगभग 2.5 प्रतिशत पर धारणीय है।

सारणी 4 : बाह्य अतिसंवेदनशील संकेतक

(प्रतिशत)

	संकट-पूर्व (2003-08)	संकट के बाद (2008-12)	2011-12
	1	2	3
भुगतान-संतुलन			
1. पण्य निर्यात संवृद्धि	25.3	17.8	23.7
2. पण्य आयात संवृद्धि	32.3	18.8	31.1
3. चालू खाते शेष/जीडीपी	-0.3	-3.0	-4.2
4. निवल पूंजी प्रवाह/जीडीपी	4.6	3.0	3.7
बाह्य ऋण			
1. ऋण-जीडीपी अनुपात	17.7	19.1	20.0
2. कुल ऋण की तुलना में अल्पावधि ऋण	13.6	20.8	22.6
3. ऋण चुकौती अनुपात	8.3	5.1	6.0
4. ऋण अनुपात की तुलना में आरक्षित निधियां	113.7	100.9	85.1
5. आरक्षित निधियों का आयात कवर (महीनों में)	14.0	9.4	7.1
खुलापन			
1. वस्तुओं और सेवाओं का निर्यात +आयात/जीडीपी	40.8	51.7	55.7
2. सकल पूंजी अंतर्वाह+बहिर्वाह/जीडीपी	36.8	50.5	48.2
3. चालू+पूंजी प्राप्तियां और भुगतान/जीडीपी	83.5	108.4	109.6
निवल आईआईपी/जीडीपी	-6.4	-10.6	-13.2

-: घाटे का संकेत देता है।

को दर्शाते हुए बाह्य अतिसंवेदनशील संकेतकों में गिरावट आई: कुल ऋण की तुलना में अल्पावधि ऋण के अनुपात में बढ़ोतरी हुई और आरक्षित निधियों का आयात कवर कम हो गया। संकट के बाद की अवधि के दौरान बाह्य स्थिति की वहनीयता के अन्य संकेतक निवल अंतरराष्ट्रीय स्थिति (आईआईपी) में गिरावट आई (सारणी 4)।

मौद्रिक नीति की भूमिका

2003-08 तक उच्च संवृद्धि चरण के दौरान मुद्रास्फीति धीमी और स्थिर रही। मुद्रास्फीति के सभी मानदंड यथा डब्ल्यूपीआई, सीपीआई और जीडीपी अपस्फीतिकारक (डिफलेटर) लगभग 5 प्रतिशत के आस-पास रहे। यह सब नियम-आधारित राजस्व नीति के चलते सुकर हुआ, जिसके कारण मौद्रिक नीति गैर मुद्रास्फीतिकारक तरीके से मुद्रास्फीति का नियत्रंण और ऋण-विस्तार पर अधिक प्रभावी ढंग से ध्यान दे पाई। अर्थव्यवस्था में बढ़ती निवेश मांग के अनुरूप, गैर खाद्य बैंक ऋण 1990 के दशक के 15.4 प्रतिशत के औसत से काफी बढ़कर 2003-08 में प्रतिवर्ष 26.7 प्रतिशत हो गया (सारणी 5)। मौद्रिक नीति ने सामाजिक ऋण संवृद्धि को विश्लेषित

सारणी 5 : मौद्रिक और मुद्रास्फीति संकेतक

(प्रतिशत)

	संकट-पूर्व (2003-08)	संकट के बाद (2008-12)	2012-13 (नवीनतम)
	1	2	3
मुद्रा और ऋण			
1. आरक्षित मुद्रा में वृद्धि (एम$_0$)	20.4	11.6	7.1
2. व्यापक मुद्रा में वृद्धि (एम$_3$)	18.6	16.4	13.9
3. खाद्येतर बैंक ऋण में वृद्धि	26.7	18.3	16.2
4. ऋण-जीडीपी अनुपात	39.3	50.8	–
5. मुद्रा गुणक (एम$_3$/एम$_0$)	4.6	4.9	5.3
मुद्रास्फीति			
1. थोक मूल्य सूचकांक	5.5	7.6	6.9
1.1 खाद्य वस्तुएं	5.2	11.8	10.1
1.2 ईंधन समूह	7.3	9.0	6.0
1.3 खाद्येतर विनिर्माण	5.0	4.8	5.4
2. सीपीआई-औद्योगिक कामगार (आईडब्ल्यू)	5.0	10.1	10.1
2.1 सीपीआई-आईडब्ल्यू खाद्य	5.5	10.9	10.5
जीडीपी अपस्फीति आधारित मुद्रास्फीति	5.3	7.7	–

करने को काफी महत्त्व दिया और अर्थव्यवस्था की ओवर हीटिंग की चिंताओं को रोकने के लिए समष्टि-विवेकसम्मत नीतियों का पालन किया और साथ ही, वित्त निवेश में ऋण प्रवाह बढ़ाना भी सुनिश्चित किया। वित्तीय स्थिरता बनाए रखने का उद्देश्य मौद्रिक नीति बनाने का अहम हिस्सा बन गया। मुद्रा आपूर्ति संवृद्धि को तेज गति से बढ़ती अर्थव्यवस्था की आवश्यकता के अनुसार संसाधन संतुलन बनाए रखने के लिए मुद्रास्फीति और संवृद्धि के पूर्वानुमानों को सुसंगत बनाया गया।

संकट-पूर्व के उच्च संवृद्धि चरण के दौरान न्यूनतम मुद्रास्फीति दर के कारण उधार संबधी सांकेतिक ब्याज दर बहुत कम रही। जबकि उधार संबधी वास्तविक ब्याज दर काफी अधिक अर्थात औसतन लगभग प्रतिवर्ष 7 प्रतिशत रही, यह निजी निवेश को रोक नहीं सकी क्योंकि स्थिर मुद्रास्फीति ने मुद्रास्फीति जोखिम की बढ़ोतरी को कम कर दिया। हर हाल में, उधार संबंधी वास्तविक ब्याज दरें 2003-08 के दौरान औसत वास्तविक जीडीपी के 8.7 प्रतिशत की तुलना में कम थीं और इसीलिए ये धारणीय थीं। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ऋणों पर काफी अनुकूल प्रतिलाभ दर के कारण बैंक मीयादी जमाराशियों पर अनुकूल वास्तविक प्रतिलाभ दर दे सके जिसके कारण पारिवारिक वित्तीय बचत में बढ़ोतरी हुई (सारणी 6)।

2008-12 के संकट के बाद की अवधि के दौरान, संवृद्धि सामान्य तौर पर कम हो गई थी, मुद्रास्फीति में वृद्धि ने मौद्रिक प्रबंधन के कार्य को बहुत ही जटिल बना दिया। रिज़र्व बैंक ने अक्तूबर 2009 में संकट-प्रेरित समायोजी मौद्रिक नीति रुख से बाहर निकलना शुरू किया। सबसे पहले रिज़र्व बैंक ने अपरंपरागत उपायों को समाप्त किया और फिर ब्याज दरें बढ़ा दी। समग्र रूप से 2008-12 के दौरान डब्ल्यूपीआई मुद्रास्फीति 7.6 प्रतिशत के औसत से अधिक हो गई जो मुख्यतः जनवरी 2010 से नवंबर 2011 की अवधि के दौरान अधिकांश महीनों में लगभग दोहरे अंक की मुद्रास्फीति को दर्शाती है। डब्ल्यूपीआई मुद्रास्फीति कम होकर लगभग 7.0 प्रतिशत रह गई किन्तु यह संकट-पूर्व अवधि के 5.5 प्रतिशत से अधिक थी। संवद्धि में कमी और साथ ही दिसंबर 2011 से डब्ल्यूपीआई मुद्रास्फीति में नरमी के संकेत के चलते रिज़र्व बैंक ने अप्रैल 2012 में रेपो दर में 50 आधार अंक की कमी करके इसे 8.0 प्रतिशत कर दिया।

सारणी 6 : सांकेतिक और वास्तविक ब्याज दरें

(प्रतिशत)

	उधार दरें			नीति दरें(रेपो)			जमा दरें (3-5वर्ष)		
	सांकेतिक	वास्तविक (पर आधारित)		सांकेतिक	वास्तविक (पर आधारित)		सांकेतिक	वास्तविक (पर आधारित)	
	डब्ल्यूए एलआर	डब्ल्यूपीआई	जीडीपी अपस्फीति कारक	नीति दरें	डब्ल्यूपीआई	जीडीपी अपस्फीति कारक	जमा दरें	डब्ल्यूपीआई	जीडीपी अपस्फीति कारक
	1	2	3	4	5	6	7	8	9
2003-08	12.4	6.9	7.1	6.8	1.3	1.5	6.9	1.4	1.6
2008-12	11.3	3.7	3.6	6.5	-1.0	-1.2	8.2	0.6	0.4
2012-13 (नवीनतम)	–	–	–	8.0	0.5	–	8.9	1.4	–

डब्ल्यूएएलआर : भारित औसत उधार दर, डब्ल्यूपीआई : थोक मूल्य सूचकांक।
– : उपलब्ध नहीं।
टिप्पणी : थोक मूल्य सूचकांक और जीडीपी अपस्फीति पर आधारित मुद्रास्फीति दरों को सांकेतिक दरों से घटाकर वास्तविक दरें निकाली गई हैं।

संकट के बाद की अवधि के दौरान मुद्रास्फीति के स्रोतों का अलग-अलग विश्लेषण करने से पता चलता है कि मुद्रस्फीति में बढ़ोतरी 2008-12 के दौरान खाद्य मूल्य मुद्रास्फीति के दोगुने अर्थात 11.8 प्रतिशत होने के कारण हुई (सारणी 5)। परिणामस्वरूप, प्रोटीन वाले खाद्य वस्तुओं की कीमतों में तेजी से वृद्धि हुई जो अपर्याप्त आपूर्ति के कारण इन वस्तुओं की अधिक मांग को दर्शाती है। ईंधन समूह मुद्रास्फीति में भी बढ़ोतरी हुई जो वैश्विक कच्चे तेल की कीमतों में बढ़ोतरी को दर्शाती हैं। परिणामस्वरूप, खाद्य मूल्य मुद्रास्फीति निरंतर बनी रहने के कारण इस अवधि के दौरान मुद्रास्फीति आधारित डब्ल्यूपीआई और सीपीआई के बीच का अंतर अधिक बढ़ गया जिससे कभी-कभी मौद्रिक नीति प्रयोजनों के लिए मुद्रास्फीतिकारी दबावों का आकलन करना जटिल हो गया।

मांग पक्ष का एक प्रमुख कारक, जिसने खाद्य मूल्य मुद्रास्फीति निरंतर बनी रहने में योगदान किया जिसके कारण मुद्रास्फीति का सामान्यीकरण हुआ और जिसने मुद्रास्फीतिक प्रत्याशाओं को बढ़ाया था, ग्रामीण मजदूरी में तीव्र वृद्धि था। जबकि कृषि और उससे जुड़ी गतिविधियों का हिस्सा जीडीपी का मात्र 14.0 प्रतिशत ही था, कुल जनसंख्या में से 68.0 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या है और 52.0 प्रतिशत कार्य शक्ति ग्रामीण क्षेत्रों की है। इसलिए, ग्रामीण मांग खाद्य मुद्रास्फीति को बुहत अधिक प्रभावित करती है और इससे समग्र मुद्रास्फीति प्रभावित होती है।

ग्रामीण कृषि और गैर-कृषि दोनों क्षेत्रों में सांकेतिक मजदूरी की वार्षिक संवृद्धि, पूर्व के उच्च संवृद्धि चरण की तुलना में, संकट के बाद की अवधि के दौरान लगभग तीन गुना हो गई। वस्तुतः वास्तविक मजदूरी में बढ़ोतरी कृषि और उससे जुड़ी गतिविधियों में जीडीपी की संवृद्धि दर की तुलना में बहुत अधिक थी (सारणी 7)।

इससे आंशिक रूप से श्रम बाजार के संकुचित होने की झलक मिलती है जो कार्य सहभागी दर (डब्ल्यूपीआर) में कमी से स्पष्ट होता है। विभिन्न सरकारी कार्यक्रमों के तहत सार्वजनिक कार्यों के लिए उच्च न्यूनतम मजदूरी में बढ़ोतरी ने भी संकट के बाद वास्तविक मजदूरी को बढ़ाने में योगदान दिया। उपलब्ध जानकारी से पता चलता है कि शहरी मजदूरी में भी काफी बढ़ोतरी हुई है। इसीलिए, खाद्य मुद्रास्फीति, जो मांग के कारण हुई, ने मजदूरी को बढ़ाने में सहयोग किया। इस प्रकार, पर्याप्त आपूर्ति न मिलने की स्थिति में इसने एक संरचनात्मक स्वरूप धारण कर लिया है। यह भी वही समय था जब वैश्विक स्तर पर खाद्य कीमतों में सामान्य बढ़ोतरी हुई।

सारणी 7 : वेतन वृद्धि

(प्रतिशत)

	संकट पूर्व (2003-08)	संकट के बाद (2008-12)
	1	2
ग्रामीण वेतन वृद्धि		
1. सांकेतिक वेतन		
1.1 कृषि	7.0*	17.2
1.2 गैर-कृषि	4.9*	14.9
1.2 वास्तविक वेतन #		
2.1 कृषि	0.8*	6.0
2.2 गैर-कृषि	-1.2*	4.0

*: 2005-06 से 2007-08 का औसत, जिसके आंकड़े उपलब्ध हैं।
#: कृषि श्रमिकों के संबंध में सीपीआई द्वारा संकुचित (डिफ्लेट) किया गया।
स्रोत: श्रम ब्यूरो।

मोटे तौर पर मुद्रास्फीति उच्च स्तर पर बनी रहने के बावजूद, औसत सांकेतिक नीतिगत दरें संकट के बाद की अवधि के दौरान कम अर्थात 6.5 प्रतिशत रहीं। सही मायने में, नीतिगत दरें उस समय ऋणात्मक हो गईं जब उधार संबंधी वास्तविक ब्याज दरें संकट के बाद की अवधि के दौरान आधी होकर लगभग 3.7 प्रतिशत रह गईं (सारणी 6)। कम वास्तविक ब्याज दरों के बावजूद, निवेश की गति मंद पड़ गई जो संवृद्धि संबंधी मंदी में गैर मौद्रिक कारकों की भूमिका को दर्शाती है। जबकि यूरोजोन संकट के चलते बढ़ती अनिश्चितताएं निवेश के वातावरण को मंद कर सकती थीं, उच्च मुद्रास्फीति का वातावरण आंशिक रूप से निवेश में मंदी का कारण बन सकता था। इस प्रकार, निवेश और संवृद्धि को बढ़ाने के लिए न्यून मुद्रास्फीति वातावरण के परिणाम के रूप में कम वास्तविक ब्याज दर वाला वातावरण अपेक्षित है। साथ ही, 2011-12 की भारतीय रिज़र्व बैंक की वार्षिक रिपोर्ट में उल्लेख किया गया है कि देशी नीति संबंधी अनिश्चितताओं और इन्फ्रास्ट्रक्चर में संरचनात्मक बाधाओं जैसी निवेश की अन्य अड़चनों को दूर करने की आवश्यकता है।

भावी चुनौतियां

अब मैं भारतीय अर्थव्यवस्था को अपनी संवृद्धि की गति पर पुनः लौटने में सामना की जानेवाली चुनौतियों को आपके समक्ष रखना चाहता हूँ।

पहला, पूर्व अनुभव से पता चलता है कि मौद्रिक नीति के लिए स्पेस बनाने में नियम-आधारित राजस्व नीति बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है जिससे बेहतर समष्टि आर्थिक निष्पादन में योगदान किया जाए। देशी निवेश दर को बढ़ाने के लिए महत्वपूर्ण देशी बचत को बढ़ावा देकर संसाधनों की कमी को दूर करने की जरूरत है।

दूसरा, मौद्रिक नीति को मुद्रास्फीति के नियंत्रण और मुद्रास्फीतिक प्रत्याशाओं को रोकने पर जोर देने की आवश्यकता है। यह कम ब्याज दर माहौल में जाने के लिए आवश्यक है जो समग्र निवेश को बढ़ाने के लिए महत्वपूर्ण है।

तीसरा, कृषि उत्पादकता को बढ़ाने और आपूर्ति लोच को सुधारने की जरूरत है। जनसंख्या के एक बड़े भाग के उपभोग वर्ग में आने को देखते हुए, पर्याप्त कृषि आपूर्ति के बिना मुद्रास्फीति का प्रबंधन आने समय में कठिन होने जा रहा है।

चौथा, जैसा कि पिछले दो वर्षों के दौरान पाया गया कि न्यूनतर परिवारिक वित्तीय बचत से आने वाले वर्षों में संवृद्धि के लिए संसाधनों की कमी की समस्या हो सकती है। यह अनेक कारकों के कारण हुआ - जैसे परिवारों की खपत की स्थिति में वृद्धि, लगातार उच्च मुद्रास्फीति और इस कारण वित्तीय आस्तियों पर न्यूनतर वास्तविक प्रतिलाभ तथा निवेश के विकल्प के रूप में सोने की बढ़ती लोकप्रियता। इसीलिए, मुद्रास्फीति पर नियंत्रण और वित्तीय आस्तियों पर वास्तविक प्रतिलाभ को सुधारना महत्वपूर्ण हो गया है ताकि संवृद्धि की संभावना में देशी बचत की अपर्याप्त आपूर्ति के चलते कोई व्यावधान न आए।

पांचवा, 2011-12 में 4.2 प्रतिशत पर ऐतिहासिक रूप से उच्च स्तर पर रहने वाले चालू खाते का घाटा न केवल अवहनीय है बल्कि अर्थव्यवस्था की संवृद्धि संभावना के लिए भी ठीक नही है। भारत के बाह्य क्षेत्र की बढ़ती अतिसंवेदनशीलता वैश्विक निवेशकों के विश्वास को रोक सकती है और वित्तीय प्रवाह, जो देशी बचत-निवेश अंतराल को भरने करने के लिए जरूरी है, को रोक सकती है। इसलिए, देशी अर्थव्यवस्था की प्रतियोगिता को बेहतर करने की जरूरत है ऐसा करने से नीतिगत माहौल निवेशकों के लिए अनुकूल बना रहेगा। इस संदर्भ में, मूल्य स्थिरता विनिमय दर स्थिरता के लिए भी महत्त्वपूर्ण है।

छठा, हम अक्सर जनसांख्यिकीय लाभांश की बात करते हैं कि भारत जैसी कई उभरती और विकासशील अर्थव्यवस्थाएं इसका मध्यम समय से लगातार लंबे समय तक उपयोग कर सकती हैं। मानव पूंजी की गुणवत्ता को सुधारने के उद्देश्य के अभाव में इस प्रकार की जनसांख्यिकीय विशेषताओं का भारतीय अर्थव्यवस्था की संवृद्धि और विकास पर अपेक्षित प्रभाव न पड़ेगा। सामाजिक क्षेत्र के विकास और कुशलता में सुधार से संबंधित नीति में बल दिया जाना चाहिए जिससे कृषि क्षेत्र में लगे अतिरिक्त श्रमिकों को औद्योगिक और सेवा क्षेत्र में लगाए जाने में मदद की जा सके।

सातवां, भारत को संवृद्धि की गति को बनाए रखने के लिए सामाजिक और भौतिक इन्फ्रास्ट्रक्चर में निवेश को बढ़ाने की आवश्यकता है। इन्फ्रास्ट्रक्चर निवेश के लिए सार्वजनिक क्षेत्र के सीमित दायरे को देखते हुए, इन्फ्रास्ट्रक्चर में निजी निवेश को प्रोत्साहित करना बहुत जरूरी हो गया है।

आठवां, गरीब और वंचित वर्ग के लोगों को संगठित ऋण बाजार की सुविधा प्रदान करने के प्रयासों पर ध्यान देने की जरूरत है ताकि संवृद्धि और विकास प्रक्रिया में उनकी भी सहभागिता हो। इससे भारत के ऋण-जीडीपी अनुपात, जो वैश्विक मानकों के अनुसार बहुत कम है, में बढ़ोतरी होगी। चूकि सांकेतिक ऋण, सांकेतिक जीडीपी की तुलना में अधिक तेजी से बढ़ेगा, अतः अल्पावधि में इस प्रक्रिया के संभावित मुद्रास्फीतिकारक प्रभाव को अधिक सावधानीपूर्वक व्यवस्थित करने की जरूरत पड़ेगी।

निष्कर्ष

अब मैं समापन करना चाहता हूँ। हाल के वर्षों में कुछ गिरावट के बावजूद संवृद्धि में जो तेजी हमने पिछले दशक के दौरान देखी है, उसने पीपीपी जीडीपी के संदर्भ में भारत को वैश्विक स्तर पर अमरीका और चीन के बाद तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था के स्थान पर पहुँचा दिया है और इसने प्रति व्यक्ति आय के संदर्भ में अपनी वैश्विक रैंकिंग में सुधार किया है। किन्तु, 1,410 अमरीकी डालर के साथ भारत की प्रति व्यक्ति आय ब्रिक्स अर्थात ब्राज़ील (10,720 अमरीकी डालर), रूस (10,400 अमरीकी डालर), चीन (4,930 अमरीकी डालर) और दक्षिण अफ्रीका (6,960 अमरीकी डालर) की तुलना में बहुत कम है।

यदि भारत को उच्चतर-मध्यम आय वाले देशों के वर्ग में पहुंचना है तो 2011 अमरीकी डालर पर 4035 अमरीकी डालर से अधिक की तुलना में जीएनआई प्रति व्यक्ति आय संबंधी मौजूदा विश्व बैंक की परिभाषा के अनुसार, भारत को अपनी संवृद्धि की गति को पुनः पाना होगा जो वैश्विक वित्तीय संकट और अनेक देशी चुनौतियों के चलते धीमी पड़ गई है। इसमें से कुछ चुनौतियों के बारे में मैंने यहां उल्लेख किया है। समुचित नीतिगत प्रतिक्रिया के चलते अगले दशक अर्थात 2025 के मध्य तक भारत उच्च-मध्यम आय वाले देश के रूप में उभर सकता है। किन्तु संवृद्धि प्रक्रिया अपने आप में जोखिम और चुनौती से मुक्त नहीं है जिन्हें पहचानने और दूर करने की जरूरत है।